Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचनात्मक दृष्टि में आधुनिक कविता

सारिका पाण्डेय*

* शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली, भारत

शोध सारांश – यह ज्ञातव्य है की हिंदी समीक्षा के परिदृश्य में रामस्वरूप चतुर्वेदी का आगमन 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (1931–2003) के बीच हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी समीक्षा के परिदृश्य में रामस्वरूप चतुर्वेदी के हस्तक्षेप का अत्यंत शुभ प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन्होंने अपनी व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक समीक्षा पद्धतियों द्वारा एक संतुलित तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्थापना की है। रामस्वरूप चतुर्वेदी सही मायने में साहित्यालोचन की इस श्रेष्ठ परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, जहां केन्द में कृति है। इसी कृति की पुनर्रचना को वे आलोचना मानते हैं। अपने इन्हीं आलोचनात्मक प्रतिमानों के प्रकाश में आलोचक ने आधुनिक हिंदी कविता का तार्किक मूल्यांकन किया है। इनसे पूर्व के आलोचकों ने शास्त्रीयवाद, मार्क्सवाद, रसवाद आदि सिद्धांतों के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन किया है। चतुर्वेदी जी ने भाषा की सृजनात्मकता को आधार बनाकर समीक्षाकर्म किया। साहित्य की आधुनिकता को वे पश्चिम से आयातित नहीं मानते बल्कि मध्यकालीन विसंगतियों– विद्रूपताओं से मुक्ति को ही वे आधुनिकता मानते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी की काव्यालोचना का वह पक्ष जो उन्हें अन्य समीक्षकों से भिन्न बनाता है वह है उनकी भाषिक सृजनात्मकता की तरफ ध्यान। भाषा तथा शैलीगत बारीकियों पर अत्यधिक ध्यान के कारण इनकी आलोचना पर 'रूपवादी सौंदर्यशास्त्र' की अतिशयता का आक्षेप लगता रहा है, परन्तु इनकी काव्यालोचना में सामाजिक तथा भाषिक दोनों पक्षों के प्रति एकसमान निकटता है। कुछ सीमाओं के बावजूद भी एक काव्यालोचक के रूप में इनकी सर्जनात्मक आलोचना यह सीख देती है कि –बिना पूर्वाग्रह की मुक्ति के आलोचना पुनर्सृजन तो दूर ढंग से सृजन भी नहीं रहती है। वह केवल पिष्टपेष्ण मात्र होती है। प्रस्तुत आलेख में आलोचक द्वारा स्थापित इन्हीं काव्यालोचना के मानदंडों पर विचार किया गया है कि क्या स्वयं आलोचक की काव्यालोचना इन मानदंडों पर खरी उतरती है अथवा नहीं।

शब्द कुंजी –सृजनात्मक आलोचना, काव्यभाषा, अर्थ–संधान, नवजागरण, स्वच्छंदतावाद, असंपृक्त, क्लासिक तथा रोमांटिक वृत्ति,द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, साठोत्तरी कविता, अकविता।

प्रस्तावना – काव्यालोचना के प्रयोजन से पहले काव्य की प्रयोजनीयता को समझना आवश्यक होता है, स्वस्थ मनुष्यता के विकास हेतु कविता अत्यंत प्रयोजनीय है। काव्य के प्रयोजन को आलोचक आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो– 'मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है की संसार की सभ्य–असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में पायी जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा।3मनुष्य को समय–समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य जाति के साथ लगी चली आ रही है और चली चलेगी। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।' रामस्वरूप चतुर्वेदी जी की आधुनिक कविता यात्रा पर लिखा यह आलेख आलोचक द्वारा स्थापित काव्य के आलोचनात्मक प्रतिमानों तथा व्याख्याओं को गहराई से प्रस्तुत करने का एक प्रयास मात्र है। इस काव्य यात्रा ने उनको भाषा संवेदन के प्रति जो पारखी और पैनी दृष्टि प्रदान की वह उनकी सृजनात्मक आलोचना के रूप में हम पाठकों के मध्य है। काव्यभाषा की सृजनात्मकता तथा संवेदना को केन्द्र बिन्दु बनाकर आलोचना कर्म में प्रवृत्त आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी,'आधुनिक कविता यात्रा के यायावर' के रूप में स्मरणीय हैं। काव्य संबंधी उनकी समीक्षा पढ़ने के क्रम में उनकी पुस्तकों के 'आमुख पृष्ठ' की चर्चा न करना, उनके आलोचक होने की भूमिका को ठीक–ठीक स्वरूप में न जानने जैसा होगा। चर्चा 'आधुनिक कविता– यात्रा' , 'नयी कविताएं एक साक्ष्य', की हो अथवा 'भाषा संवेदना और सर्जन', 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', की हो उनके आमुख में लिखे वाक्य, आलोचक के आलोचना कर्म के प्रति पाठक को आश्वस्त कर उन्हें यह भरोसा दिलाते हैं कि –

'भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे / प्रनवउं सबहिं कपट सब त्यागे।'

विश्वसनीयता, विनम्रता ये कुछ ऐसे गुण हैं जो आलोचक को आलोचक बने रहने देते हैं, इनकी अनुपस्थिति में सारगर्भित तथा सार्थक आलोचना संभव नहीं। 'नयी कविताएं एक साक्ष्य' के आमुख में आलोचक पाठकों से आत्मविश्वास भाव में कह रहा है 'साक्ष्य आरम्भ करने के पूर्व समीक्षक और क्या कह सकता है सिवा इसके कि जितना कुछ वह जानता है अपने विश्वास के अनुसार सच कहेगा और यों साहित्यिक सच की व्याख्या के विकास में सहयोग देगा।' उनके आलोचना कर्म में एकदम बुनियादी प्रश्न – कविता क्या है, कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए, कवि की सृजनात्मक पुनर्रचना तथा आलोचना कर्म की कठिनाई, समकालीन रचना की समस्या, संभावना तक का पूरा जीवंत दृश्य उपस्थित है। स्वयं आलोचक के ही शब्दों में कहें – 'कविता साहित्य चिंतन के केन्द्र में है तो इसलिए कि कविता की भाषा सबसे अधिक सर्जनात्मक होती है, और इसी माने में कविता सबसे अधिक साहित्य है।' चूंकि आलोचक की अपनी एक सृजनात्मक भाषा तथा पद्धति होती है, अपने इन्हीं उपकरणों के सहारे उसे पूर्व में हुई विविध स्तरीय अनुभव की पुनर्रचना में अर्थ–संधान करना होता है। इस प्रकिया में आलोचक को

विशेष रूप से सचेत रहना चाहिए की कहीं रचना के समानांतर एक प्रतिरचना का संसार तो नहीं खड़ा हो रहा अथवा विश्लेषण या वर्णन के अतिरेक से रचना / पुनर्रचना की समग्रता तो नहीं नष्ट हो रही। यह सिद्धान्त स्वयं चतुर्वेदी जी के आलोचना कर्म पर लागू करें तो पाते हैं कि – बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ उनके यहां भारतेंदु युग से लेकर नयी कविता तक के विकास क्रम को रेखांकित किया गया है। प्रत्येक काल की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती प्रवृत्तियों, परिवर्तनों पर इनकी पैनी दृष्टि है ।

आधुनिक काल का प्रथम चरण जिसमे लिखी गयी रचनाओं पर आलोचकों ने 'साम्प्रदायिकता का स्वर' रेखांकित करने का आरोप लगाया है। चतुर्वेदी जी भारतेंदु के 'बलिया व्याख्यान' से लेकर निराला (तुलसीदास) तक छानबीन कर डालते हैं और पाते हैं कि– 'इससे बड़ी प्रगतिशील और व्यावहारिक दृष्टि आज भी संभव नहीं कि हिन्दू और मुसलमान के हित भारतवर्ष में एक दूसरे से जुड़े हुए हैंय और इसलिए उनके कार्यक्रम संयुक्त होने चाहिए।' चतुर्वेदी जी गहरे आत्मविश्वास से कहते हैं आधुनिक काल की शुरुआत से ही देशप्रेम का मंत्र जपने वाले हिंदी लेखक उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा के शिकार नहीं बल्कि देश की वहां एक 'धर्मनिरपेक्ष' परिकल्पना की गयी है। इस युग की काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा अधिक तथा खड़ीबोली अपने शुरूआती चरण के साथ मिलते हैं। बच्चन सिंह ने अपने इतिहास ग्रंथ में बहुत स्पष्ट तरीके से भारतेन्दु युगीन काव्यभाषा पर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं कि – 'काव्य की एक लंबी परंपरा जो ब्रजभाषा में उपलब्ध थी उसे सहसा छोड़ा नहीं जा सकता था।3ब्रजभाषा के कवियों में दो तरह के लोग सम्मिलित थे – शुद्ध रीतिवादी और अविशुद्ध रीतिवादी कवि।' साथ ही कवियों की सीमा दिखाते हुए इन्होंने यह भी कहा कि – 'विशुद्ध रीतिवादी कवि नवजागरण काल में भी रीतिकाव्य लिख रहे थे, वे कालिक चेतना से सर्वथा असंपृक्त थे।'

बात करें द्विवेदी युग की तो उसमें भी लेखकों के बौद्धिक विकास में युगीन पत्र – पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पत्रकारिता ही उनकी पाठशाला हुआ करती थी। जहां 'भारतेन्दु मंडल' के रचनाकारों का स्वभाव विनोदी था वहां 'द्विवेदी मंडल' में कड़े नियम अनुशासन की प्रधानता, फिर तो ये प्रवृत्तियां आवश्यक रूप से रचनाओं में भी परिलक्षित होनी ही थीं। द्विवेदी युग में काव्य प्रवृत्तियां थोड़ी भिन्न सी हो गयी। द्विवेदी युग में काव्य का विषय ज्ञान – विज्ञान, पौराणिक आख्यान बनने लगा। यहां पर काव्य, कथा, उपन्यास पर विशेष ध्यान दिया गया। चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'पर जीवन की पाठशाला का सतत् विद्यार्थी रहने के लिए वह पत्रकारिता का साथ नहीं छोड़ता।' भारतेन्दु युग में जो समस्यापूर्ति ब्रजभाषा में थी उसकी भाषा यहां खड़ीबोली हो गई पर प्रवृत्ति वही रही जिसे लेखक, कविसम्मेलनों में सुनाते थे। चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'आरंभिक खड़ीबोली काव्य को प्रचारित – प्रसारित करने में इन समस्यापूर्ति सम्मेलनों का विशेष योगदान रहा है।' इस युग में साहित्य में दो धाराएं प्रचलित रहीं – एक धारा ने 'क्लासिक वृत्ति' को तथा दूसरी काव्य धारा ने 'रोमांटिक वृत्ति' को काव्य रचना का आधार बनाया। पहली धारा के प्रतिनिधि कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध हुए तथा दूसरी धारा के श्रीधर पाठक। भारतेन्दु युग की द्वैत काव्यभाषा के बाद द्विवेदी युग की काव्यभाषा पर चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'यह ठीक है कि 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से खड़ीबोली को कविता और गद्य में समभाव से प्रतिष्ठित करने का ऐतिहासिक श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है, पर रचनात्मक स्तर पर इस समस्या से पहले श्रीधर पाठक जूझे।' इस युग की रचनाओं में भाषा का अनुशासन है तो स्वच्छंदतावाद की सहजता भी, प्रकृति के चित्रण के साथ जन–जीवन का भी चित्रण है। खड़ीबोली हिंदी का पहला महाकाव्य हरिऔध द्वारा 1914 में इसी युग में रचा गया। इस युग की एक विशेष प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'आधुनिक काल में मनुष्य ही सम्पूर्ण रचना और चिंतन के केंद्र में है, ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं।' इस प्रवृत्ति विशेष को आलोचक ने इस युग के बड़े कवि हरिऔध के 'प्रियप्रवास' में देखा। खड़ीबोली कविता के साथ ब्रजभाषा काव्य की भी एक धारा यहां विद्यमान थी जिसके प्रतिनिधि 'जगन्नाथ दास रत्नाकर' थे। आलोचक को इनकी काव्य कृतियों में आधुनिक विचार तो न के बराबर मिलता है परन्तु परंपरा से लिखी जा रही ब्रजभाषा काव्य के विधान में एक नयापन जरूर दिखाई देता है। द्विवेदी युग में बहुत कुछ तो अच्छा हुआ, जैसे काव्यभाषा का परिष्कार, रीतिवादी काव्य का विरोध, उद्देश्यपूर्ण काव्य लेखन, कविता का विषय तत्कालीन ज्ञान –विज्ञान को बनाना परन्तु उनकी कुछ सीमाएं भी थीं जिसे आलोचक नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में कहें तो – 'द्विवेदी युग अपनी नवीनता के कारण सम्मानित हुआ। नवीन युग का उत्साह नवीन कविता में अवश्य देखा गयाय पर जीवन के अंतरंग को स्पर्श करने वाली वास्तविक काव्यसृष्टि कम ही हो सकी।'

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने छायावाद का 'शक्तिकाव्य' के रूप मे क्रांतिकारी पुनर्मूल्यांकन किया है । हिंदी साहित्य के छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा इन कवि चतुष्टय की प्रतिष्ठा स्वीकार की जाती रही है। इस युग से पूर्व के युग में काव्य अनुशासन की ऐसी लहर उठी थी कि वे श्रृंगार के प्राचीन कवि तथा ग्रंथ दोनों से ही बचते दिखलायी पड़ते हैं। परिणामस्वरूप एक बनावटी उपदेश कविताओं में द्रष्टव्य होता है। नंद दुलारे वाजपेयी इसी प्रवृत्ति की ओर इशारा करके लिखते हैं – 'द्विवेदी युग के साहित्यिकों को श्रृंगार के प्रति शंका रहती थी। उस समय की यत्किंचित् श्रृंगारोन्मुख रचनाएं देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कविगण कितना भयभीत होकर फूँक –फूँक कदम रखते थे।'

छायावादी कवियों में निराला के प्रति चतुर्वेदी जी का विशेष आकर्षण रहा है, मौलिकता इनकी विशेषता रही है। 'तुलसीदास' (1938) , 'राम की शक्ति पूजा' (1936) निराला के मौलिकता की शिखर रचनाएं हैं। निराला के यहां आलोचक को दो विरोधी प्रवृत्तियों का अद्भुत सामंजस्य एक साथ मिलता है – माधुर्य तथा ओज। छायावाद को अंग्रेजी प्रभाव के रूप में तथा प्रसाद जी के 'विश्राम' को पलायन कहने वाले हिंदी आलोचकों का यह संदर्भ चतुर्वेदी जी को बड़ा अटपटा लगता है। जिसकी वे पुन: अपने ढंग से व्याख्या करते हैं। छायावाद के प्रति कटु तथा दुर्वचनों को वे गठलिका(अंधानुकरण) कहकर संबोधित करते हैं। पहले आरोप पर उन्होंने कहा – 'छायावाद के विकास में बंगला और अंग्रेजी की भूमिका प्रासंगिक ही है, आधिकारिक नहीं।' दूसरे आरोप के प्रसंग पर कुछ खींझ कर लिखते हैं – 'विश्राम तो श्रम का पूरक है और पलायन कर्म, श्रम, संघर्ष से भागना है।' इतने समर्थ रचनाकार पर ऐसा आक्षेप आलोचक को सहनीय नहीं। प्रकृति के प्रति सबसे अधिक आकर्षण चतुर्वेदी जी सुमित्रानंदन पंत में शुरुआत से ही देखते हैं। ऐसा शायद पंत की पल्लव में संकलित 'मोह' शीर्षक कविता को पढ़कर आलोचक को लगा होगा, जो निम्न है–

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,

बाले! तेरे बाल - जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन?
भूल अभी से इस जग को!'

पंत की कविताओं में प्रकृति चित्रण तो है लेकिन वह बाहर से थोपा हुआ नहीं। कवि चतुष्टय की अंतिम रचनाकार महादेवी वर्मा के विषय में आलोचक ने कहा है कि - 'वहां निष्क्रिय करुणा न होकर रचनात्मक करुणा का भाव विद्यमान है।' महादेवी वर्मा के काव्य का विश्लेषण करते हुए चतुर्वेदी जी पाते हैं कि इनकी कविताओं में अभिव्यक्त प्रेम वेदना पावन तथा उदात्त है न कि विलासितापूर्ण।

छायावाद से उत्तर छायावाद को अलगाने के क्रम में आलोचक को ठीक वैसा संबंध दिखाई देता है जैसा मध्यकाल में भक्ति तथा रीतिकाव्य के मध्य में था। चतुर्वेदी जी ने लिखा है - 'जायसी- सूर- तुलसी के बाद जैसे बिहारी - मतिराम- देव का क्रम है, कुछ वैसे ही प्रसाद- निराला- पंत के बाद बच्चन- दिनकर- नरेन्द्र का।' दिनकर की बात करें तो उनके आलोचनात्मक ग्रंथ 'शुद्ध कविता की खोज' में तो उन्होंने काव्य को केवल 'शरीर के अनुभव' तक ही तो नहीं स्वीकारा है बल्कि उन्होंने कहा है - 'ईश्वर, कविता और क्रांति ये जीवन के समुच्चय में प्रवेश किये बिना नहीं समझे जा सकते।' काव्य विवेचन को लेकर रामधारी सिंह दिनकर की दृष्टि साफ- सुथरी रही है। हिंदी काव्य यात्रा सन् 1936 के आसपास अपने को वैचारिक धरातल पर परिवर्तित करती है। नये कवियों ने धूल-मिट्टी से सने सामाजिक यथार्थ को काव्य का विषय बनाया। इस तरह से साहित्य पर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित मार्क्सवादी दर्शन की छाया पड़ी। इस प्रगतिवादी काव्य की भाषा तथा संवेदना को समझने के लिए आलोचक ने प्रगतिवादी त्रयी में शामिल नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री के काव्य का व्यावहारिक मूल्यांकन किया है। आलोचक ने प्रगतिवादी त्रयी के कवियों में नागार्जुन को हिंदी कविता में सर्वाधिक जनप्रिय कवि के रूप में माना है। नागार्जुन की कविता में सत्ता की तानाशाही प्रवृत्ति के प्रति खुला विरोध दिखाई देता है। इस त्रयी के अगले कवि केदारनाथ अग्रवाल हैं। इनकी कविताओं में मार्क्सवाद बड़े सहज रूप में घुला-मिला है न की ऊपर से आरोपित। केदारनाथ अग्रवाल धरती के कवि हैं। प्रगतिशील काव्यधारा के अगले कवि हैं त्रिलोचन शास्त्री। इनकी कविता की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें संबोधन की सीधी शैली विद्यमान है। इनके यहां कविता में आये शब्द केवल भाषा को चुस्त-दुरुस्त करने हेतु नहीं।

प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के बाह्य यथार्थ से तो जोड़ा लेकिन जीवन के आंतरिक यथार्थ की उपेक्षा कर दी, प्रयोगवाद का जन्म इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। इनके प्रिय कवियों में सबसे पहले अज्ञेय का नाम आयेगा। जहां अज्ञेय के यहां आलोचक 'गद्य की सजगता' देखते हैं, मुक्तिबोध की कविताओं में उनको 'गद्य का दबाव' दिखाई देता है तो शमशेर के यहां 'गद्य की लय'। अपनी रचनाओं में नये सत्यों का खुलासा करके जहां अज्ञेय चौंकाया करते हैं वहीं मुक्तिबोध चौंकाते नहीं सीधे धक्का ही दे देते हैं और रघुवीर सहाय उसी धक्का-मुक्की में से अपनी राह खोज लेते हैं। इनके यहां कलात्मक शुचिता की ओर कोई ध्यान नहीं, सारे प्रयोग विषय वस्तु को लेकर हैं, इसीलिए अज्ञेय की काव्यभाषा पर टिप्पणी करते हुए चतुर्वेदी जी लिखते हैं - 'भाषा के संबंध में अज्ञेय जैसी सावधानी कम ही रचनाकारों ने बरती है।' कालांतर में अतिशय बौद्धिकता तथा वैयक्तिकता के कारण हिंदी साहित्य में नयी कविता एक नये कलेवर के साथ उपस्थित हुई।

प्रयोगवाद में रचनाकारों के अतिकलावादी आग्रह के फलस्वरूप काव्य में 'नयी कविता' का उद्भव हुआ। स्वयं रामस्वरूप चतुर्वेदी इस काव्यान्दोलन से जुड़े आलोचक रहे हैं। नयी कविता की पहचान इन्होंने सबसे पहले सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं से की है। नयी कविता में ही 'लघु मानव' का भी जन्म हुआ जिसे रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'भाषा- संवेदना और सर्जन२(1996) में मनुष्य का समग्र अनुभव खंड कह कर संबोधित करते हैं। आलोचक के अनुसार नयी कविता के कवियों ने पुराने काव्य प्रतिमानों की जगह नये अछूते उपमान, बिम्ब-विधान की खोज की। अज्ञेय के 'कलगी बाजरे की', मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' शमशेर की कविता 'भोर का नभ' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। कविता में छंद के प्रयोग पर आलोचक का विचार है कि - नयी संवेदना को व्यक्त करने हेतु काव्य रचना का पुराना अनुशासन ठीक नहीं। नयी कविता में विचारों का दबाव है इसलिए यहां 'अर्थ की लय' पर ध्यान देना चाहिए न कि बाहरी साज-सज्जा पर। आलोचक में समकालीन कविता के प्रति यह स्वीकार्य का साहस है कि- समकालीन कविता के उत्तर दृश्य में तकनीकी तथा औद्योगिक प्रभाव बढ़ने से भले ही निकटता सुलभ हुई परन्तु अतिरिक्त बढ़ते दबावों ने कविता की प्रकृति को वैसा रहने नहीं दिया। निकटता सुलभ तो हुई परन्तु अनुभवों के पकने में रुकावट के कारण रचना प्रक्रिया में आलोचक को वह ताप नहीं महसूस होता जो जयशंकर प्रसाद के यहां इस भाँति अभिव्यक्त हुआ है -

'जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छायी,
दुर्दिन में आंसू बनकर वह आज बरसने आयी।'

हमारे इतिहास में जो दौर तीव्र मोहभंग का रहा है हिंदी साहित्य में वह साठोत्तरी कविता का दौर कहलाया। साठ के दशक के बाद की कविता में विभाजन की विभीषिका, भारत चीन युद्ध, द्वितीय विश्व युद्ध का उत्तरकालीन प्रभाव, शहरीकरण आदि कारणों से एक बार पुन: मानवीय मूल्य क्षरित होने लगे। ऐसे में साठोत्तरी कविता के रूप में एक आक्रोशपूर्ण वातावरण तैयार हुआ। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस परिवर्तित होती चेतना के स्वरूप को नयी युगीन चेतना के रूप में स्वीकार किया है। ऐसे मूल्य विघटन के समय कई छोटे-बड़े काव्यान्दोलन शुरू हुये। जिसमें अकविता काव्यान्दोलन सबसे पहले हुआ। अकविता काव्यान्दोलन के मुख्य सूत्रधार डॉ0 श्याम परमार तथा जगदीश चतुर्वेदी रहे हैं।

एक समय ऐसा भी आया जब अकविता आगे के कवियों को अराजकतावादी कविता लगने लगी। अप्रचलित तथा कठोर शब्दावलियों में लिखी जाने वाली कविता की भाषा व्यंग्यात्मक संवाद के साथ तल्ख भाषा में प्रचलित होने लगी। यहां से धूमिल, रघुवीर सहाय, कुमार विकल जैसे कवियों को जनवादी काव्यधारा का प्रतिनिधि माना गया। इन कवियों ने व्याप्त विसंगतियों को लेकर केवल शोर मचाने के बजाय धैर्यपूर्वक कारणों की खोज पर ध्यान दिया। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नयी कविता तथा साठोत्तरी कविता के बीच के अंतर को सूक्ष्म रूप में विश्लेषित किया है। उन्होंने माना है कि नयी कविता व्यष्टि तथा समष्टि दोनों के संतुलन का प्रयास करती है परन्तु साठोत्तरी कविता में आक्रामकता की भावना है।

निष्कर्ष - हिंदी साहित्य में काव्यालोचन की परंपरा में आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने सर्वप्रथम भाषा तथा संवेदना को एक संतुलित दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित परंपरा में जो ठीक नहीं उसे वे नकारते हैं तथा समकालीन साहित्य पर भी निष्पक्ष विचार करने का साहस रखते हैं। अपने आलोचना कर्म द्वारा वे रचनाकारों, पाठकों, नये -पुराने

आलोचकों के लिए तमाम विचार सूत्र छोड़ते चले हैं। अत: वर्तमान साहित्यालोचना के लिए उन्होने नये द्वार खोले हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शुक्ल, रामचंद्र, चिंतामणि भाग 1, साहित्य सेवा प्रकाशन (वाराणसी), संस्करण: 2009.
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, आधुनिक कविता यात्रा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2022.
3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, नयी कविताएं एक साक्ष्य, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: चतुर्थ (2015).
4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2019.
5. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण: 2020.
6. वाजपेयी, नंददुलारे, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2023.
7. पंत, सुमित्रानंदन, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, संस्करण: 2022.
8. दिनकर, रामधारी सिंह, शुद्ध कविता की खोज, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2024.
9. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, भाषा, संवेदना और सर्जन, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2025.
10. शैदा, विश्वनाथ लाल (संपादक), आँसू की समीक्षा, प्रभात प्रिंटिंग प्रेस, आजमगढ़, प्रथम संस्करण: 1954.

****